International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925(Online), Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 03(III), July- September, 2025, pp. 197-202

राग, रस तथा भाव

दीक्षा चौधरी*

शोधार्थी, विश्वविधालय संगीत विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार।

*Corresponding Author: dikshaa1986choudhary30@gmail.com

Citation: चौधरीदीक्षा. (2025). राग, रस तथा भाव. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science, 07(03(III)), 197–202. https://doi.org/10.62823/ijemmasss/7.3(iii).8240

सार

संगीत का प्रयोजन सांसारिक चिन्ताओं से दबे हुए थके हुए मानव को उन चिंताओं से मुक्त कराकर अलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। जिसमें यह गुण हो, उसे ही भलीभाँति गाया हुआ या संगीत (सम्यक्–गीत) कहना चाहिए, अन्यथा वह कोलाहल मात्र है, भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार हो। स्वर, भाषा, ताल और मार्ग का आश्रय लेकर 'गीत' मानव की भावना को व्यक्त करता है 'वादन' गीत का सहायक होता है और 'नृत्य' उस भावना को मूर्त कर देता है। इसलिए गीत, वाद्य और नृत्य मिलाकर संगीत कहलाते हैं। गीत संगीत का प्रधान अंश है, वाद्य और नृत्य उसके सहायक है। परंतु गीत सम्पूर्ण संगीत नहीं है। मानव द्वारा गेय गीत के भी चार अंग, राग, भाषा, ताल और मार्ग हैं। इन चारों का प्रयोजन भावना की अभिव्यक्ति है। इसीलिए ये चारों परस्पर सहायक या पूरक हैं, चारों मिलाकर गीत है, इनमें से अकेला रहकर कोई गीत नहीं हैं।

शब्दकोशः *राग, रस, भाव, नृत्य, ताल।*

प्रस्तावना

सौन्दर्य अनंत है, उसकी अभिव्यक्ति के साधन अनंत हैं। सौन्दर्य–बोध से प्राप्त होने वाला आनंद भी अनंत है, अतः सौन्दर्य और उसकी अनुभूति से प्राप्त होने वाले आनंद के रूपों और प्रकारों पर विचार करने वाला शास्त्र भी अनंतता की ओर इंगित करता और हमें चिंतन करने में समर्थ बनाता है। ललित कलाओं का सृजन सौन्दर्य हेतु प्रस्तुतीकरण सौन्दर्यपूर्ण और उपलब्धि सौन्दर्यानुभूति है, यह कथन सही है। सौन्दर्य का परिणाम है आनन्द, अन्तः कला के तत्वों में एक तत्व है सौन्दर्य और सौन्दर्य के तत्वों में एक है आनंदात। अतः कला तथा आनन्द का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। सौन्दर्य केवल एन्द्रिय न हो, वरन् वह आत्मिक आनन्द प्राप्त करे। यही आत्मिक आनन्द साहित्य की भाषा में रस नाम से अभिहित है। रस शब्द का प्रयोग परम सौन्दर्यानुभूति के सन्दर्भ में किया गया है। तैत्तरीय उपनिषद में कहा गया है कि "कला का प्राण रस है और कला का लक्ष्य रसानुभूति। कलाकार अपनी कृति में अपने भावों को मूर्त रूप देकर व्यक्त करता है, वे ही भाव रस रूप में संचरित होकर द्रष्टा अथवा श्रोता को आनन्द प्रदान करते हैं। संगीत में रसानुभूति किस प्रकार तथा किन–किन माध्यमों से होती है, यह जानना आवश्यक है। इसके पहले रस क्या है, रस और भाव का क्या संबंध है, रस कितने है, रस की निष्पत्ति किस प्रकार संभव है? यह जाननाा आवश्यक है–

* *Copyright © 2025 by Author's and Licensed by Inspira. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work properly cited.*

'रस' शब्द का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति, साहित्य और संगीत से अनादि काल से जुङा हुआ है। जिसका अर्थ, मन की 'उत्कृष्टवृत्ति' अर्थात् 'रस' एक समग्र सम्पूर्ण मानसिक चेतना है जिसे अनुभव किया जा सकता है।

मानव का समस्त जीवन रसमय होता है। जीवन में विरसता तभी आती है जब हमारी भावनाओं में, हमारी व्यवहार में और हमारी सोच में विकृत आने लगती है। इसलिए 'रस' अनिवार्य तत्व है। डॉ. सुरेशव्रत राय ने लिखा है, "रस अनिवार्यतः अनुभवजन्य है, चाहे संगीत रस हो, चाहे काव्य रस हो, सभी अनुभूतिजन्य है, अतः इनकी व्याख्या करना कठिन है फिर भी 'रस' न केवल आध्यात्मिक जीवन में बल्कि लौकिक जीवन की महत्त्वपूर्ण रागात्मक वृत्ति है, यह एक समग्र सम्पूर्ण मानसिक चेतना है जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है, रस का मूलाधार 'भाव'है।" इसी भाव को कलाकार अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करता हैजो दूसरों को सुख देता है, आनन्द देता है, यही 'रस' है। यह एक कारण है कि रस और सौन्दर्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। पहले कोई भी कला, कोई भी वस्तु हमें सुन्दर प्रतीत होती है और हमें सुखानुभूति होती है यही अनुभूति 'रस' है। अतएव 'रस' 'मन'की दशा कही गई है जैसा पंडित बलदेव उपाध्याय ने "भारतीय वाङ्मय में श्री राधा" ग्रंथ में उल्लेख किया है, 'रस' भाव की एक दशा है और वह भावमयी अवस्था एक अखंड, अनन्य मनोवस्था है।"

'रस' अपने आप में इतना विस्तृत है कि इसकी व्याख्या एक या दो शब्दों में न होकर अनगिनत शब्दों में की जाती है। वेदों में 'रस' के लिए मधु, दुग्ध, सोम, जल आदि। वृहदारण्यक उपनिषद में ब्रह्म को ही 'रसरूप' कहा गया है रसौ वै सः। काव्य, साहित्य आदि में आनन्दानुभूति को ही 'रस' कहा गया है। संगीत के क्षेत्र में स्थाई स्वर में आनन्दानुभूति को ही 'रस' कहा गया है। "संगीत के क्षेत्र में स्थाई स्वर पर आश्रित सम्वादी स्वरों द्वारा उदीप्त अनुवादी स्वरों से अभिव्यक्ति माधुर्य की 'चेतना' को 'रस' कहा गया हे।" अतः रस एक विशेष प्रकार की आत्मतृप्ति है, आत्मसन्तोष है, जिसके प्रभाव में रजोगुण, तमोगुण, से उत्पन्न क्रोध, तनाव, चिन्ता, शोक, मोह जैसे विषयगत विकास समाप्त होकर एक ऐसे सत्य का अनुभव कराते हैं जो शिव भी है और सुन्दर भी है। इसी "सत्यम् शिवं सुन्दरम्" की त्रिवेणी जब भी प्रभावित होती है तभी अखण्ड आनंद, स्वयं प्रकाश, रागात्मिका वृत्ति और रस–प्रभवणता उत्पन्न होती है जो 'रस' के ही विकल्प हैं। नाट्यशास्त्र के टीकाकरण आचार्य अभिनवगुप्त ने लिखा है, "रस का अर्थ आनन्द है और वह आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत होता है।" अग्निपुराण में उल्लेख है ब्राह्म अक्षर है, परम सनातन है इसलिए रसौ वै सः है। यही एक कारण है कि भारतीय कलाओं, काव्य आदि को देवी–देवताओं से जोङकर इसी पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक तत्व को रखा गया है।

रस की सर्वप्रथम व्याख्या भरतकृत नाट्यशास्त्र में प्राप्त होती है। 'रस' से सम्बन्धित उनका प्रसिध्द सूत्र है "तत्र विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी संयोगाद्रसः निष्पत्तिः" अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। रस के सम्बन्ध में भारत ने प्रथम लौकिक रूप से व्याख्या की है क्योंकि जीवन के हर क्षेत्र में रस की व्यापकता की है। बोलने, चलने, उठने, बैठने आदि सभी में एक प्रकार का सलीका या सुघड़पन एक 'रस' है। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों, फल आदि का मधुरतम स्वाद 'रस' है। चिकित्सा क्षेत्र में रोगी के लिए प्राण रक्षक औषधि 'रस' है, फिर काव्य, संगीत तथा अन्य सभी ललित कलाओं का तो प्रारंम्भ ही 'रस' है क्योंकि बिना रस के न तो काव्य जीवन्त हो पाता और न ही संगीत में भाव विह्वलता की स्थिति उत्पन्न हो पाती है। डॉ. सुरेशव्रतराय के अनुसार रस की यही सबसे बङी विशेषता है कि सामान्य जीवन में हर्ष में उल्लास और प्रसन्नता, दुःख से शोक की अनुभूति होती है। परन्तु 'रस' की ही अपनी अनुठी विशेषता है कि चाहे करूण हो, चाहे संवेग प्रधान अन्य स्थिति हो मात्र आनन्द की अनुभति होती है। भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में 8 रस, 8 उसके स्थायी भाव, 33 व्यभिचारी भाव, और 8 सात्विक भाव इस प्रकार कुल 49 भावों की सूची दी है। भरत का ग्रंथ यद्यपि मूल में नाटक के संदर्भ में है इसलिए उनकी चर्चा नाट्य की पृष्ठभूमि में की है, तथापि काव्य तथा संगीत में भी उनकी चर्चा की है। भरत का रस सिध्दान्त ही काव्य, साहित्य नाटक, कहानी संगीत आदि अन्य कलाओं पर लागू किया जाता है। भरत ने कहा है कि यदि किसी वाक्य को काव्य कहलाना हो तो उसे रसपूर्ण बन जाना चाहिए, अर्थात रस काव्य की आवश्यक दशा है।

राग और रसभाव

मानव–अंतर्वृत्ति बुद्धि तथा भावना दोनों से युक्त है। ह्रदय भावनाओं का क्रीड़ा–क्षेत्र है और मस्तिष्क बुद्धि के चमत्कार का। संगीत में इन दोनों ही मनोवृत्तियों का स्वतंत्र स्थान है। प्रेम, कारूण्य, निर्वेद, वात्सल्य, वीरत्व इत्यादि सभी कोमल भावनाओं का हमारे ह्रदय से घनिष्ठ संबंध है। ये भावनाएँ ही मनुष्य को मनुष्य कहलाने योग्य बनाती हैं। यदि अपमान देखकर हम आवेश तथा क्रोध से नहीं तमतमा उठते, दुःख हमें कातर नहीं बना देता, किसी हँसने वाली बात पर हम खिलखिलाकर हँस नहीं पडते तो जड़ पदार्थों और मनुष्य में भेद ही क्या रह जाएगा। अपने दुःख–सुख की अनुभूति तो पशु–पक्षी भी कर ही लेते हैं, फिर भी मनुष्य और इतर प्राणियों में अन्तर ही क्या है। किन्तु मानव– ह्रदय इतना संकुचित नहीं है। इतर प्राणियों की दुःख और सुख की अनुभति भी संवेदना के साथ करता है। शकुन्तला नाटक पढ़कर हमें पृथ्वी और स्वर्ग के मिलन की अनुभूति होती है। इसी प्रकार "लाग्यों तोसों नेह रैना–दिना कल ना परे" हमें अपने ह्रदय के निकट प्रतीत होता है। किसी भूली हुई बात की तरह ये पंक्तियाँ हमारे ह्रदय में ना जाने कितनी स्मृतियाँ जाग्रत कर देती हैं। कविता के इसी शक्ति का नाम है–'साधारणीकरण'

'मेघदूत' में यक्ष के ह्रदय के साथ हमारे ह्रदय का तादात्म्य स्थापित हो जाता है और तब हम ऐसे जगत् में विचरण करते हैं। जो काल्पनिक होते हुए भी हमारी भावनात्मक प्रवृत्तियों के अधिक अनुकूल तथा उनका क्रीडा–क्षेत्र होता है। ह्रदय को इतना संवेदनशील बनाने में साहित्य और संगीत का बहुत अधिक हाथ हैं। इसी से तपस्वी 'भर्तृहरि' ने कहा है–

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः।

सचमुच पशु और मनुष्य में यही अन्तर है। पशु–वर्ग अपने सुख–दुःख की अनुभूति भी संवेदना के साथ कर सकता है। यह संगीत की सामान्य भूमि हैं। यहाँ से संगीत कला का रूप ग्रहण करने लगता है। संगीत और साहित्य, दोनों ही की उत्पत्ति की तीव्र उद्रेक से होती है। ह्रदय में भावनाओं का आवेश आते ही कल्पना तरंगे लेने लगती है और तभी पहले संगीत का और फिर काव्य का जन्म होता है।

आचार्यों ने शांत रस के साथ रस के कुल नौ प्रकार माने हैं। किंतु वीभत्स, भयानक, रौद्र, अद्भुत और हास्य इन पाँचों को छोड भी दिया जाय तब भी संगीत में केवल श्रृंगार, करूण, वीर और शांत, इन चार रसों से ही बखूबी काम चल सकता है। संगीत के अन्तर्गत गायन वादन और नृत्य तीनों आते हैं और बाकी पाँच रसों का प्रयोग नृत्य में होता है।यद्यपि की गायन वादक में पाँच रसो का बहिष्कार सा दृष्टिगोचर होता है। इन चारों रसों का स्थान संगीत में अधिक व्यापक है। श्रृंगार तो इसीलिए रसराज माना जाता है कि अन्य रसों का समावेश इस रस के अन्तर्गत हो सकता है तथा पशु, पक्षी, मनुष्य इन सभी में रति की भावना समान रूप से प्रबल है।

'उत्तर रामचरित' नाटक में कविवर भवभूति ने यह घोषणा कर दी कि निमित्त भिन्न कारणों से करूण रस ही अन्यान्य रसों का रूप धारण कर लेता है–

एक करूण ही मुख्य रस, निमित भेद सों सोइ।
पृथक– पृथक परिणाम में, भासत बहुविधि होई।
बुद बुद, भंवर, तरंग, जिमि होत प्रतीत अनेक।
पै यथार्थ में सबनि को हेतु–रूप जल एक।

उत्तररामचरित नाटक–सत्यनारायण कविरत्न कृत।

शांत रस को देव–विषयक रति मानकर शांत का समावेश भी श्रृंगार के अन्तर्गत किया जा सकता है। परंतु शान्त रस की रीढ़ की हड्डी 'निर्वेद'ही है। संपूर्ण मनोविकारों के शान्त होने पर ज्ञानी का ह्रदय जब एकाग्र हो जाता है, तब निर्वेद का उदय होता है।किंतु गायक भावुक होने का कारण ज्ञानमार्गी न होकर भक्तिमार्गी हो

जाता है और सच्चा भक्त जिस प्रकार अपने भगवान को प्रत्यक्ष कर लेता है, उसी प्रकार सच्चा गायक भी अपने राग को मूर्तिमान् कर लेता है। कला का यही रहस्य है। साकेतकार के शब्दों में "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला है।"

भारतीय संगीत के संधिप्रकाशकालीन रागों का सम्बन्ध शांत रस से बहुत अधिक है। प्रातः काल सूर्योदय के समय तथा सायंकाल में सूर्यास्त के समय मानव–प्रवृत्ति शांत रस की ओर स्वतः झुक जाती है। प्रकृति की शोभा भी संधिप्रकाश के समय कुछ विलक्षण ही होती है। भावुक हृदय प्रकृति के अणु–परमाणु तक में संगीत का अनुभव करने लगता है। 'प्रसाद' जी की देव देवसेना ने ठीक कहा है, विजया! प्रत्येक परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी–हरी पत्ती के हिलने में एक लय है। मनुष्य ने अपना स्वर विकृत कर रखा है, इसी से तो उसका स्वर विश्व–वीणा में शीघ्र नहीं मिलता। पांडित्य के मारे जब देखो, जहाँ देखो बेताल–बेसुरा बोलेगा। पक्षियों को देखो, उनकी चहचह, कलकल, छलछल में रागिनी है" (स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, छठा संस्करण, पृष्ठ 53)

गायक के हृदय में प्रकृति का यह सौन्दर्य कल्पना की तरंगें भर देता है और प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य उसे शांत रस में तल्लीन कर देता है। इसी से संधिप्रकाशकालीन गीतों में ईश्वर–भक्ति अथवा प्राकृतिक सौन्दर्य का भाव बड़ा भला प्रतीत होता है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। सच्चा वीर अपने शत्रु पर केवल विजय चाहता है, शत्रु को मार डालना उसका ध्येय नहीं होता। अपना अनिष्ट करने वाला ही शत्रु–रूप में हमारे सामने आता है और उसे दंड देने के लिए हम तत्पर हो जाते हैं। यों तो यह संसार ही संघर्ष पूर्ण है और संघर्ष का ही वास्तविक नाम जीवन है। पर जब शत्रु देश का शत्रु होने के कारण अथवा अन्यायी, अत्याचारी अथवा प्रजापीडक होने के कारण रस के लिए उचित क्रोध, आवेश तथा उत्साह की उद्भावना होती है। इस उत्साह को उद्दीप्त करने में संगीत बड़ा सहायक होता है। और फिर–"युध्द क्या गान नहीं है? रूद्र श्रृंगीनाद, भैरवी का तांडव नृत्य और शास्त्रों का वाद्य मिलकर भैरव–संगीत की सृष्टि होती है। जीवन के अंतिम दृश्य को जानते हुए अपनी आँखों से देखना, जीवन–रहस्य के चरम सौन्दर्य की नग्न और भयानक वास्तविकता का अनुभव केवल सच्चे वीर–हृदय को होता है। अत्याचार के श्मशान में ही मंगल का, शिव का, सत्य व सुन्दर संगीत का शुभारंभ होता है" (स्कंदगुप्त विक्रमादित्य' में जयमाला, छठा संस्करण, पृष्ठ–45) परन्तु खेद है कि भारतीय संगीत में वीररसात्मक चीजों का अभाव है।

संगीत से सबसे अधिक चीजें मिलती हैं श्रृंगार रस की। खयाल की गायकी का उत्कर्ष हिन्दी के रीतिकाल के समय से होना शुरू हुआ था, अतः उस समय की कितनी ही चीजों में तत्कालीन भावनाओं की गहरी छाप है। साहित्य और संगीत, दोनों ही ललित कलाएँ हैं, अतः दोनों ही मानप–हृदय को आनन्द पहुँचाने का प्रमुख साधन रही है। परन्तु कालान्तर में वास्तविक आनन्द का स्वरूप विकृत हो गया और श्रृंगार के नाम पर कामुकता का प्रचार किया जाने लगा। यही भूल मुहम्मदशाह रँगीले के समय में हुई और इस भूल के परिणामस्वरूप संगीत कुत्सित समाज के हाथों में चला गया। वस्तुतः श्रृंगार और कामुकता में जमीन–आसमान का अंतर है। वास्तविक प्रेम कामुकता में दृष्टिगोचर नहीं होता। उसमें तो चाहे जिस तरह से, अत्याचार और अन्याय से भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति ही एकमात्र उद्देश्य होता है ऐसा हृदय कभी एक के प्रति सच्चा नहीं होता, किन्तु वास्तविक प्रेमी की भावनाएँ कुछ और ही होती हैं। वासना तो यहाँ भी मिलेगी, किन्तु वह प्रिय के प्रति सर्वस्व समर्पण करके अपने हृदय को हारकर ही प्रिय का हृदय जीतता है। उनकी आँखे अपने प्रिय के अतिरिक्त अन्य को नहीं देखती हैं। प्रेमी की भावना तो बस यही रहती है कि प्रिय चाहे जहाँ रहे, सुख से रहे।

प्रियतम–छवि नैनन बसी, पर–छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहिमन लखि, आप पथिक फिर जा।

वियोग में श्रृंगार के बङे सुन्दर चित्र मिलते हैं। प्रिय जितना ही दूर होता है हृदय–रूपी दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब भी उतना ही गहरा पड़ता है। मन–मंदिर के उस देवता से हृदय न जाने क्या बातें करता रहता है। भावनाओं को अत्यधिक तरंगित करने में वियोग (विप्रलम्भ श्रृंगार) सबसे अधिक प्रभावशाली है और यही कारण है कि भारतीय संगीत में श्रृंगाररसात्मक गीतों की इतनी अधिकता है। भावनाओं के प्रबल होने पर हृदय से स्वतः गीतो की रचना हो जाती है और फिर उसे किसी–से–किसी राग में बैठा दिया जाता है। अगर हम तीनों रसो की व्याख्या करें तो पता चलता है कि 'कोमल रे, घ' लगने वाले संधिप्रकाश राग शान्त और करूण रस के परिचायक माने जा सकते हैं, क्योंकि इनकी मनोवृत्तियाँ इन रसों की ओर प्रेरित करती हैं। दिन–भर परिश्रम के बाद सायंकाल को शरीर क्लांत होने पर एक विचित्र विषाद का अनुभव करता है। अतः मन ऊबकर स्वतः निर्वेद का अनुभव करने लगता है। प्रकृति उसे अपनी ओर खींचकर अपनी शांतिदायनी क्रोड़ में विश्राम देती है सूर्योदय के समय ब्रह्म मूहूर्त में रात्रि भर विश्राम लेने के बाद अपूर्व उल्लास का अनुभव होता है।

जो राग ओज के साथ गाए जाने पर अच्छे लगते हैं, उन्हें वीर रसात्मक राग मानना चाहिए। आड़ाना, शंकरा, हमीर, मालकौस राग आवेश और ओज के साथ गाए जाने पर जितने कर्ण प्रिय मालूम होते हैं, उतने माधुर्य भाव से गाये जाने पर अच्छे नहीं लगते। ये सब राग उतरांग प्रधान होते हैं। खमाज थाट और काफी थाट के वे राग, जो रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में गाए जाते हैं, अथवा कल्याण थाट के वे राग, जो रात्रिके दूसरे और तीसरे प्रहर में गाए जाते हैं, अथवा कल्याण थाट के वे राग जो रात्रि के इन्हीं दो प्रहरों में गाए जाते हैं, श्रृंगार–रस के अन्तर्गत माने जाने चाहिएँ क्योंकि ये श्रृंगारिक भावपाओं के अधिक अनुकूल हैं, और बाकी बचे वे राग जो ऋतुकालीन हैं, जैसे–बसंत, बहार, देश, मल्हार, इत्यादि यहाँ भी ऋतु की विशेषता से ही रागों का रस ठहराना ठीक है। वर्षा और बसंत, दोनों ही श्रृंगार की भावना को उद्दीप्त करने वाली ऋतुएँ है। इसीलिए इन दोनों के वर्णन में प्रायः वियोगजन्य भावनाओं के उद्दीपन का उल्लेख मिलेगा। बहार की प्रसिद्ध चीज 'बालमवा माई री' को ही लीजिए, बरन–बरन की कलियाँ, लहरानी बन बलेरियाँ यहाँ तक बसंत ऋतु का उल्लेख है। इसके बाद 'सखी अजहूँ नहीं आये' के साथ ऋतु का उद्दीपन–प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रभाव का उत्कर्ष हमें चीज के अन्तर के आरम्भ में ही "हौबिरहन बौरानी ज्यों–ज्यों लहरानी हरियाँ' सुनाई देता है। इसके 'बाद ऋतु बसंत में अजहूँ के दिन पिया सौतन के संग डोल रहे' कहकर चित्र पूरा कर दिया जाता है।

प्रकृति के सौंदर्य की ओर मानव–हृदय तीन प्रकार से आकर्षित होता है। एक संयोजन–विभाग की भावना के साथ, दूसरा वियोग–श्रृंगार की भावना के साथ और तीसरा शान्त भावना से प्रकृति के सौंदय का उपासक होकर। संयोग–श्रृंगार में प्रकृति के जो चित्र हृदय को अनंत शान्ति देने वाले होते है, वे ही चित्र वियोग में हृदय को उदिग्न करने वाले हो जाते हैं। वर्षा का दृश्य लीजिए, संयोग पक्ष में वर्षाकालीन दृश्य बङा सुहावना प्रतीत होता है। बिजली की चमक ऐसी दिखाई देती है, मानो आकाश से स्वर्ण बरस रहा हो। यदि प्रेमिका अपने हृदयेश्वर के साथ है, तो उस 'दादुर' और 'मोर' के शब्द बङे अच्छे मालूम होगें–

चमक बीजु बरसै जल सोना।
दादुर मोर सबद सुठ लोना।

(जायसी कृत 'पदमावत' में पद्मावती का कथन)

ऐसा ही उल्लास वर्षाकालीन संयोग–श्रृंगार के गीतों में दिखाई देगा। उदाहरण के लिए मियाँमल्हार, झपताल की एक चीज देखिए–

आयो है मेध, नई रूत पावय झर लायो, देख हुलसाय हिया, नए पिया प्यारी कौ।
पहन चुनर सुरंग, अंग भूखर नयो, नयो बादर, नयो जोबन ब्रिजबारी कौ।

(क्रतिक पुस्तक–मालिका, भाग–4)

संयोगात्क उल्लास का कैसा सुंदर चित्र है। किंतु वियोग में यही सुहावना दृश्य बङा दुःखद हो जाता है। संयोग के दिन एक टीस के साथ अतीत की मधुर स्मृरत का रूप ले लेते हैं।उस समय बिजली की चमक से

सोना बरसता हुआ नहीं मालूम होता, यह बिजली अब 'खड्ग' का रूप धारण कर लेती है और बूँदो का बाण–वर्षा–सी प्रतीत होने लगती हैं। प्रिय के वियोग में प्रेयसी की दशा देखिए–

खड्ग बीजु चमके चहुँ ओरा।
बुँद बान बरसहि चहुँ ओरा।

(जायसी–कृत "पदमावत" में नागमती का कथन)

यहाँ भी वियोग के कारण प्रकृति का सुहावना दृश्य दुःखद हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह हैकि संयोग पक्ष में प्रकृत का जो सौंदर्य हृदय को अनुपम शीतलता प्रदान करने वाला होता है, वियोग में वही दृश्य हृदय को परम संताप पहुँचाने वाला हो जाता है।

राग, रस भाव का सबसे सुन्दर उदाहरण, देवगिरि विलावल राग का छोटो ख्याल है जिसमें राम वनवास प्रसंग में सीता और लक्ष्मण के साथ भगवान वन जाते हैं तो नर और नारी सीता से पुछते हैं जिसका अभिनव गीतांजलि के लेखक "पं. रामाश्रय झा रामरंग" ने पृष्ठ–72, में वर्णन किया है।

स्थायी–कौन तुम्हारे लागत, कुँवर सावरे गोरे।
अन्तरा–सकुचि सुनायों सिय, देवर गोरे मोरे, रामरंग सैया सांवरे"

इस प्रसंग में सीता मुस्कराते हुए इशारा करती हैं कि जो गोरे हैं वे मेरे देवर हैं और मोरे सैया साँवरे हैं। साहित्स का कितना सुन्दर चित्रण और राग में पिरोया है पं. रामाश्रय झा ने।

निष्कर्ष रूप में राग, रस तथा भाव तीनों की विवेचना के बाद तीन बातें सामने आती हैं–

- भारतीय संगीत भावना प्रधान हैं।
- नव रसों में से भारतीय संगीत में मुख्यतः चार श्रृंगार, करूण, शांत और वीर रस ही ग्राह्य हैं। इन चारों रसों में भी वीर रस को छोड़कर अन्य रसों का समावेश उनमें से किसी भी एक रस के साथ किया जा सकता है। इन तीनों रसों में भी श्रृंगार–रस अत्यधिक व्यापक होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है।
- अन्तिम बात यह है कि भारतीय संगीत के गीतों में वीर रसात्मक गीतों का प्रत्येक राग में प्राचुर्य है।

तात्पर्य यह है कि समुचित रस–योजना ही संगीत का मूल उद्देश्य है। किंतु रस का यह व्यक्तिकरण बिना अनुभूति के अधूरा रह जाता है। जिसे स्वतः ही रसानुभूति नहीं है, वह रस–निरूपण कर भी कैसे सकता है। अतः गायक का अनुभव बहुत गहरा और सच्चा होना चाहिए। नशे के आवेश में निकली हुई भावनाएँ सच्चे हृदय का व्यक्तिकरण नहीं, प्रत्युत वासना और कामुकता की दुर्गंध की प्रतीक होती हैं। आराध्यदेव के चरणों में आत्मसमर्पण करके अपने अहम् को भुलाकर ही सच्ची भावुकता प्राप्त होती है। यह भावुकता कभी भी किसी नशे के अधीन नहीं रहती। वह नशा है जो सदैव स्थिर रहता है। इसी से प्रायः सच्चे गायक को किसी न किसी का इष्ट अवश्य होता है। जब वह गाता है तो पहले हृदय में इष्टदेव को प्रणाम कर लेता है और जब गाना समाप्त करता है, तब भी उसे प्रणाम करना नहीं भूलता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्ट, डॉ. विश्वंभरनाथ, क्रमिक तान–आलाप, भाग–3, संगीत कार्यालय, हाथरस , (उ.प्र.)
2. रामरंग, पं. रामाश्रय झा, अभिनव गीतांजलि, भाग–1 संगीत सदन प्रकाशन, 88साउथ मलाका, इलाहाबाद (उ.प्र.)
3. जैन श्रीमती विजय लक्ष्मी, संगीत दर्शन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
4. आचार्य बृहस्पति, संगीत–चिंतामणि, संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.)
5. शर्मा, डा. महारानी, संगीत मणि, भाग–1 श्री भुनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, (उ.प्र.)
6. भातखण्डे, पं. विष्णुनारायण, हि. क्र., पु. मालिका भाग–4, संगीत कार्यालय, हाथरस, (उ.प्र.).

❑❑❑